

स्वतंत्र भारत, कल्याणकारी राज्य और नागरिकों के उत्तदायित्व

—रमेशचन्द्र लाहोटी (पूर्व प्रधान न्यायाधीश, भारत)

20 जनवरी, 1949 को भारत के लोगों ने भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व—संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए एक संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्म—समर्पित किया। भारत के लोगों ने इस लोकतंत्रात्मक गणराज्य और संविधान से अपेक्षा की कि वह भारतवर्ष के समस्त नागरिकों को न्याय, अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराएगा और बंधुता बढ़ाएगा। न्याय की अवधारणा में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की त्रिधारा समाहित है। बंधुता का उद्देश्य है कि व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित हो। प्रजातंत्र की उक्त अवधारणा उस संविधान की उद्देशिका से प्रतिध्वनित होती है जो संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है और एक बेशकीमती दस्तावेज़ है। स्वतंत्र भारत के रूप में इस देश के उन कोटि—कोटि लोगों का वह स्वप्न साकार हुआ है जिसके लिए लक्ष्य—लक्ष्य लोगों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया, लाठियां—गोलियां खाईं, जेल में चक्की और कोल्हू पीसे और न जाने कितने त्याग किये। यही वह स्वप्न है जिसे देखकर अशफाक उल्ला खां जैसे शहीदों ने कहा था —

कभी वो दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे
जब अपनी ही ज़मीं होगी जब अपना आसमां होगा।

क्या यह स्वप्न साकार हो सका है? क्या भारतवर्ष के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय मिल सका है? क्या प्रत्येक भारतवासी को वह स्वतंत्रता प्राप्त है जिसमें वह अपने विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना के अधिकार का मुक्त प्रयोग कर सके? क्या भारतवर्ष के नागरिकों के बीच ऐसी बंधुता का प्रादुर्भाव हो चुका है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा सुप्रतिष्ठित है और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित है?

इसमें संदेह नहीं कि भारतवर्ष एक सशक्त राष्ट्र है। समस्याएं हैं, झंझावत हैं, विरोध और मतभेद हैं, गतिरोध भी हैं। फिर भी देश आगे बढ़ रहा है और प्रगति कर रहा है। पर क्या यह प्रगति ऐसी है जिससे हम संतुष्ट हो सकते हैं? क्या यह प्रगति भारतवर्ष को विश्व गुरु का वह आसन दिला सकेगी जिस पर कभी वह आसीन था? क्या इस प्रगति से प्राप्त सम्पन्नता के लाभ समान रूप से वितरित होकर उन सभी तक पहुंच सके हैं जो इसके वास्तविक हकदार हैं?

हमारा संविधान हमारी प्रभुसत्ता की परिकल्पना एक कल्याणकारी राज्य के रूप में करता है। स्वतंत्र देश के नागरिकों के केवल अधिकार ही नहीं होते कर्तव्य भी होते हैं। नागरिकता केवल कोई गणवेश नहीं है, 'नागरिकता' एक संपूर्ण आचार संहिता है, एक आदर्श है, एक दर्शन है।

भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में संविधान की उद्देशिका में लिखित आदर्शों की प्राप्ति तभी हो सकती है जब शासन एक कल्याणकारी राज्य का उत्तरदायित्व समझकर उसका निर्वाह करे। साथ ही, नागरिक भी समझें कि एक प्रजातंत्र में नागरिक होने का अर्थ क्या होता है?

एक आदर्श कल्याणकारी राज्य—व्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिए कि राज्य में प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताएं — रोटी, कपड़ा और मकान — पूरी हो चुकी हों, रहन—सहन का स्तर धीरे—धीरे ऊपर उठे, लोगों को निजी व्यापार—व्यवसाय का स्वातंत्र्य हो और शासन केवल उचित कर की वसूली न्याय—व्यवस्था के लिए करे। शासन स्वयं कोई व्यापार व्यवसाय तभी करे जहां निजी क्षेत्र विफल हो गया हो। अन्यथा, भ्रष्टाचार बढ़ेगा।

कल्याणकारी राज्य में आदर्श नागरिकों की रचना करना भी शासन का उत्तरदायित्व है, उनका उत्तरदायित्व जो सत्ता में हैं, जिन्हें जनता ने अपना प्रतिनिधि—अपना भाग्यविधाता—चुना है। इस परिवर्तन का माध्यम होते हैं शिक्षा और चरित्र। वह शिक्षण पद्धति जो विदेशी शासक भारतवासियों को अपने उद्देश्य अथवा स्वार्थपूर्ति के लिये प्रयोग में लाते थे अब अप्रासंगिक हो जाती है। नवीन शिक्षा पद्धति का लक्ष्य देशवासियों के चरित्र का निर्माण और उन्हें स्वावलम्बी बनाने की दिशा में होना चाहिए। वही शिक्षा एक स्वतंत्र देश के लिये प्रासंगिक होगी जो व्यक्ति में अन्तर्निहित गुणों और क्षमता को जाग्रत एवं सम्पुष्ट करे। कल्याणकारी राज्य में शासकों का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं है। निर्वाचित शासकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि वे देशवासियों के प्रति उत्तरदायी हैं और स्वतंत्र देश में मतदाता शासकों का शासक होता है। प्रभुसत्ता के अंगों (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) को यह नहीं भूलना चाहिए कि उन सभी का लक्ष्य देशवासियों की सेवा करना है और उनके द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम और लिया गया निर्णय देशवासियों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करने वाला होना चाहिए। नागरिकों को भी नहीं भूलना चाहिए कि अब वे विदेशी सत्ता से संघर्ष नहीं कर रहे हैं बल्कि उन्हें अपने ही द्वारा चुने गए जन प्रतिनिधियों के साथ सहयोग कर उनके हाथ मजबूत करने हैं ताकि वे देश की रक्षा कर सकें और देशवासियों की सेवा के लिए निरन्तर ऊर्जा अर्जित कर सकें।

संविधान के रचयिता दूरदृष्टि संपन्न थे। संविधान के पाठ में मूल अधिकारों का समावेश तो किया गया किन्तु नागरिकों के मूल कर्तव्य भी होने चाहिए इस पर या तो किसी का ध्यान नहीं गया या इसे आवश्यक नहीं समझा गया। कदाचित उन्होंने सोचा था कि भारत के लोग और उन्हीं में से चुने गए उनके नेता 'भारतीय' तो बने ही रहेंगे। पर यह अवधारणा भ्रान्त निकली। लगभग ढाई दशक के उपरान्त 42वें संशोधन के माध्यम से संविधान में भाग 4 क, अनुच्छेद 51 क का समावेश करना ही पड़ा जिसमें स्वतंत्र भारत के नागरिकों के मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। यह अनुच्छेद कहता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह —

- (क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करें;
- (ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे ;
- (ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे ;
- (घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे ;
- (ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं ;
- (च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;
- (छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;
- (ज) वैज्ञानिक, दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;
- (झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;
- (ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

उपरोक्त अनुच्छेद 51 क स्वतंत्र देश के प्रत्येक नागरिक की आदर्श आचार संहिता है। इस पाठ का समावेश माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा के पाठ्यक्रम में किया जाना चाहिए और उच्च एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर इनमें से प्रत्येक कर्तव्य पर कुछ गहन गंभीर चिन्तन महाविद्यालयीन शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

किसी भी देश को अपने मूलाधार से विलग नहीं होना चाहिये। हमारे अपने सांस्कृतिक मूल्य और हमारे अपने महापुरुषों की जीवन गाथायें आधुनिकता में बाधक नहीं हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, एक ओजस्वी भारत के लिये हमें अपने "ऋषियों द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा और सदियों की दासता के फलस्वरूप प्राप्त अपनी जड़ता को उखाड़ फेंकना होगा। हमें आगे बढ़ना

ही चाहिये—अपने स्वयं के भाव के अनुसार, अपने स्वयं के पथ से। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है—भारत में वह धर्म है।”

वर्तमान भारतीय चिन्तन में कुछ परिवर्तन आवश्यक हैं। पंथ—निपरेक्ष शासन धर्म—निरपेक्ष नहीं होता। धर्म का विरोध नहीं बल्कि सर्व—धर्मों में सामंजस्य की स्थापना कर सारे धर्मों के मूल सार से निसृत होने वाले गुण प्रत्येक भारतीय के व्यक्तित्व को सुशोभित करें, यह शासन की नीति होनी चाहिए। शिक्षा में आमूल—चूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। नागरिकों को केवल अपने अधिकारों की ही नहीं, कर्तव्यों के निर्वाह को भी प्राथमिकता देनी चाहिए।

शासन ‘कल्याणकारी’ हो और देश के नागरिक कर्तव्य पथ पर आरुढ़। आधार हो हमारी अपनी संस्कृति और मार्गदर्शक हों — दोनों के ही — हमारे अपने सांस्कृतिक मूल्य। तभी देश में सुख—शान्ति का सृजन होगा, विधि के शासन की स्थापना हो सकेगी और भारत, दूसरे देशों के लिए अनुकरणीय आदर्श बन सकेगा।
